

सहजानंद शास्त्रमाला

# मनोहर-पद्मावली

## भाग-2

रचयिता

अद्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी “सहजानन्द” महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास  
गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001



## मनोहर पद्मावलि द्वितीय भाग

(ब्रत प्रतिमा लेने के बाद राचत भजनों का संग्रह)

(१२४) “बारह भावना”

दोहा—नमू नमू आनन्दघन, हे विराग विज्ञान  
वमू वमू भव पीर सब, करुं सुखामृत पान

छन्द—हम सब चाहें जगके जीव, दुःख न हो सुख रहे सदीव।  
सुखके अर्थ भरचौ श्रम भार, सुख नहिं पायो कबहु लगाई॥

अनित्य भावना

तन धन पुत्र मित्र परिवार, परिणति इनकी इनके लार।  
मैं आहूं मो माफिक रहें, सोचो फिर कैसे सुख लहै॥

अशरण भावना

तन धन गृह भुत किकर नार, इनसे सुख जीवन भ्रम धार।  
इनको दास न बन सुन भ्रात, कर्म उदैं जीवन सुख सात॥

संसार भावना

हो न कबहुं दुख वह सुख सार, इन्द्रिय भोग हैं प्रकट असार।  
रंक राव सब तृष्णागार, सो असार संबंधिं संसार॥

एकत्व भावना

बन्धु मित्र जाने सुखकार, तेरो सुख तुझ माँहि अपार।  
सो भूलयो कीनो विधि बन्ध, तातैं विपदा को सम्बन्ध॥

मनोहर पद्यावलि द्वितीय भाग

### अन्यत्र भावना

ओ तू यह तन तज कर जयि, तेरो तन फिर नाहिं कहयि ॥

श्रव हूं हस तनसे तू भिन्न, तो न विराने होय अभिन्न ॥६॥

### अशुचि भावना

खून पीव मल मूत्र मलीन, ऐसे, तन से का रति कीने ।

तेरो तोक्षुचि ज्ञान शरीर, परम शान्ति अमृत रस सीरनी ॥

### आश्रव भावना

मन बच तनके चंचल होत, होत, विचल यह आतम ज्योति ।

सो ही विधि को आवन द्वार, ताते चंचलता निरवास ॥७॥

### संवर भावना

कर्म रहके कारज बन आय, ताको भाई एक उपाय ।

शुद्ध निजातम परिणति देख, यही कोटि शास्त्रज्ञि को लेख ॥८॥

### निर्जरा भावना

जैसी रुके विषय की चाह, शान्त होय सब तृष्णा दोहे ।

पूर्वबद्ध विधि होय अबन्ध, हो अनंत सुखका सम्बन्ध ॥९॥

### लोक भावना

तीन लोकके सब ही धान, उपज्यो मरचो भयो दुख खान ।

नाना विधि इन्द्रिय सुख लह्यो, तो भी टुक संतोष न गह्यो ॥१०॥

### बोधिदुर्लभ भावना

मिले मिले सुरपति के भोग, कंचन कामिनि को संयोग ।

विस्मय नहीं सुलभ सब जान, दुर्लभ है स्वातम सरधान ॥११॥

## मनोहर पश्चावलि द्वितीय भाग

५

प्रियोग का

धर्म भावना

नहीं राग नहिं द्वेष न मोह, न हो, विविध कल्पन संदोह ।

तत्त्वभासना केवल होय, सो ही धर्म सत्य मुख जोय ॥१३॥

दोहा

को मैं आयो किधर से, जाऊंगा किस ओर ।

चितवत् चितवत् एक दिन पा लूँगा शिव ठौर ॥१४॥

आत्म प्रगट लेखते सभी, विश्व प्रकट हूँ होय ।

पै निज आनंद लीनता हर न सके टुक कोय ॥१५॥

हे स्वतन्त्र विज्ञानमय बीतराग भगवान् ।

बसो 'मनोहर' के हृदय गलै मोह की शान ॥१६॥

( १२५ ) आत्मकोर्तन

हे स्वतन्त्र निश्चल निष्काम ॥ जाता द्रष्टा आत्म राम ॥टेक॥

मैं वह हूँ जो हैं भगवान्, जो मैं हूँ वह हैं भगवान् ।

अन्तर यही उपरी जान, वे विराग यहैं रागवितान ॥१॥

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति मुख ज्ञान निधान ।

किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥२॥

मुख दुख दाता कोइ न आन, मोह राग रुष दुख की खान ।

निजको निज परको पर जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ॥३॥

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।

राग त्यागि पहुँचू निजधाम, आकुलताका फिर क्या काम ॥४॥

होता स्वयं जगत् परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।  
दूर हटो परकृत परिणाम, “सहजानन्द” रहूँ अभिराम ॥५॥

( १२६ )

मत राग करो, मत द्वेष करो, यहैं कोई किसीका नहीं हुआ ।  
ज्ञाता द्रष्टा तेरा स्वभाव यों आप भूल क्यों दुखी हुआ ॥टेक॥  
जनमत ही तो ये काम क्रोध, माया मद लोभ न कहीं दिखा ।  
ज्यों ज्यों बढ़ती गई तेरी आयु, किसके बहकाये भ्रमी हुआ ॥१॥  
जिनको तू अपना कहता था, तुझको जो अपना कहते थे ।  
वे रहे नहीं तू नहीं गया, फिर क्यों इनमें बेहोश हुआ ॥२॥  
जो होता है वह होने दो, हे सहज न उनमें रागी हो ।  
यह मायामय वैभव तेरा, नहिं है, होगा, न कभी हुआ ॥३॥

( १२७ ) “आरती” (प्राचीन चालमें)

ॐ जय जय अविकारी ॥टेक॥

काम क्रोध मद लोभ न माया, समरस सुखधारी ।  
ध्यान तुम्हारा भव्य जनों के, सकल क्लेशहारी ॥१॥  
हे स्वभावमय जिन तुमि चीना, भव संतति टारी ।  
तुव भूलत भव भवमें भटकत, सहत विपति भारी ॥२॥  
पर सम्बंध बंध दुख कारण, करत अहित भारी ।  
हे निज ब्रह्म लीनता तेरी, चहुं गति दुखहारी ॥३॥  
ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन, मुनि मन सञ्चारी ।  
निर्विकल्प ज्ञायक परमात्म, शुचि गुणभंडारी ॥४॥

मनोहर पद्मोवलि द्वितीय भाग

बसो बसो हे सहज ज्ञान घन, सहजशांतिचारी ।  
टलैं टलैं सब मोह उपद्रव, परबल बलधारी ॥५॥

( १२८ )

मेरा पहचानहार दूसरा न कोई रे ।

जाता की दृष्टि भली बुरी नहिं होय रे ॥टेक॥

मूरत ही मूरत को देख देख रीस जात,

मूरत ही मूरत को देख देख रीझ जात ।

अविनाशी ज्ञान रूप देखे न कोई रे,

जाता की दृष्टि भली बुरी नहिं होय रे । मेरा० ॥१॥

हाड़ मांस लोथड़ का आदर अपमान यहाँ,

देखते न आत्मतत्त्व ज्ञानरूप अलख यहाँ ।

जिसे कोई मानता ये खाक यहीं होय रे,

जाता की दृष्टि भली बुरी नहिं होय रे । मेरा० ॥२॥

विपदा का नाम कहाँ जग के परिणाम यहाँ,

परिगमे वे अपने में तेरी क्या हानि कहाँ ।

भूठ मूठ सोच मूर्ख दुखिया ही होय रे,

जाता की दृष्टि भली बुरी नहिं होय रे । मेरा० ॥३॥

सहजानन्द सहज ज्ञान, इसका नहीं यहाँ मान,

माया की माया से हो रही पहचान ठान ।

किस ही का मैं न कोइ मेरा न कोई रे,

जाता की दृष्टि भली बुरी नहिं होय रे । मेरा० ॥४॥

( १२६ ) “आरती” (वर्तमान चाल)

ॐ जय जय अविकारी ॥ ये शिखिकारी ॥

जय जय अविकारी, ॐ, जय जय अविकारी ॥ प्रविहारा ॥

हितकारी भयहारी, शाश्वत स्वविहारी ॥ प्रविहारी ॥ टेका ॥

ॐ जय जय अविकारी ॥ टेका ॥ ये शिखिकारी ॥

काम क्लोध मद लोभ न माया, समरससुखधारी ॥ ३३ ॥

ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेशहारी ॥ ३४ ॥ १३॥

हे स्वभावमय जिन तुमि चौना, भव संतति टारी ॥ ३५ ॥

तुव भूलब भव भटकत, सहत विष्पत भारी ॥ ३६ ॥ १४॥

परसम्बन्ध बंध दुख कारण, करत आहित भारी ॥ ३७ ॥

परमब्रह्मकम दर्शन, चहुंगति दुखहारी ॥ ३८ ॥

ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन, समुनिमन सचारी ॥ ३९ ॥

निर्विकल्प शिवनायक, शुचिगुणभंडारी ॥ ३० ॥

बसो बसो हे सहजज्ञानधन, सहजशान्तिज्ञासीह ॥ ४० ॥

टले टले संबंधाकाळे, परबल बलधारी ॥ ३१ ॥

मायामयो साज ( ३१ ) कुछ भी न सार यहाँ;

राग मैं ध्यान लगाऊ कहो, कुछ भी न सार यहाँहाँ ॥ टेका ॥

मायामयी सरिं जहांमि मैं ध्यान लगाऊ कहाँ ॥ टेका ॥

ओ ज्ञानवाले खुदको भुलाके, सुख पाना मुश्किल मनको लुभाके ॥

राग बुरी गतिकी निशां ॥ मैं ध्यान० ॥ ११॥

खुद ही तो मैं हूं आनंदका घर, बस जाऊँ खुदमें फिर है कहां डर ।  
 स्वाश्रित सुखमय हूं यहां ॥ मैं ध्यान० ॥२॥  
 नित्य निरंजन, शुद्ध सनातन, ज्ञानसुधामय खुद ही मैं पावन ।  
 शान्त सदा शिवमय यहां । मैं ध्यान० ॥३॥  
 सब द्रव्योंमें सबसे आला, सबका ज्ञाता सबसे निराला ।  
 स्वात्म भजे होगी रिहां । मैं ध्यान० ॥४॥  
 सहजानंद स्वरस शुचि पी के, अथिर विषय क्यों लागे नीके ।  
 दर्द निदां सारा जहां । मैं ध्यान० ॥५॥

( १३१ )

मेरी हृष्टि में नाथ विराजा, मेरे सिद्ध हुए सब काजा,  
 सारी बाधायें गईं, शुद्ध परिणतियां भईं । मेरी० ॥टेक॥

तू न था हृष्टिमें सो भ्रमा लोकमें, जड़से नेहा लगा रच रहा शोकमें ।  
 जब से आया तू नजर, भागे सारे ही फिकर ।  
 मेरे ज्ञानमें तू ही समा जा । मेरे०, सारी०, शुद्ध०, मेरी हृष्टि० ॥१॥  
 क्रोध मद लोभ छल रंच मुझमें नहीं, शुद्ध ही वर्तता सर्वदा तू यहीं ।  
 नहिं देखेसे मिले, ज्ञानहृष्टिसे मिले । जगका तारनहार जहाजा ।

मेरे० सारी० । शुद्ध० मेरी हृष्टि० ॥२॥

रूप रस गंध त्वक से परे अज अमर, शुद्ध ज्ञायकस्वरूप  
 चेतनाप्रकाशभर । जिसके दर्शनसे सदा, संकट आते न कदा ।  
 मेरा सहजानंद विराजा । शुद्ध० मेरे० सारी० । मेरी० ॥३॥

( १३२ )

गुंजा विश्व था वीर देवकी, दिव्यध्वनिकी धारों से ।  
 ज्ञानमार्ग संचार हुआ था, संतों के अवतारों से ।  
 किन्तु आज कहना है खुदसे व सहधर्मी प्यारों से ।  
 आत्महितैषी पक्षरहित अविचारों से सविचारों से ।

×                    ×                    ×

चिदानन्दमय अपने प्रभुको, भूल गया कुविचारोंसे ।  
 अपने आपकी भूलमें तड़फा, कष्टों की भरमारों से ॥टेक॥  
 ज्ञान और आनन्द शक्ति का, पुंज स्वर्य ऐश्वर्य यहाँ ।  
 देह विभव जड़ इष्ट मान कर, भूला भटका यहाँ वहाँ ॥  
 अपने ही अपने स्वरूपमें, परिणमते सब द्रव्य यहाँ ।  
 फिर बतलावो कौन किसीका, कर सकता है कार्य यहाँ ॥

दूर हटो अब मिथ्या जालों मिथ्याचार विचारोंसे ।

अपने आपकी भूल में० । चिदा०, अपने आप० ॥१॥

ज्ञान और आनन्दभावका, अपना अनुभव करते हैं ।  
 हुआ ज्ञान आनन्द अन्यसे, मान भटकते फिरते हैं ॥  
 नहीं ज्ञान आनन्द अन्यमें, मेरा फिर कैसे आये,  
 लेश ज्ञान आनन्द न जड़में, उनसे फिर कैसे आये ।

कह दो सच्ची बात कुटुम्बसे, सारे पहरेदारोंसे,  
 अपने० । चिदानन्द०, अपने आपकी० ॥२॥

अपना ही उत्पाद करें सब, अपना ही व्यय करते हैं,  
अपनी ही सब पर्यायों में, खुद ही खुद ही रहते हैं।  
रंच किसी का गुण या पर्यय, नहीं अन्यमें जा पाता,  
कोई मुझको कैसे सुख दुख या मैं परको दे पाता।

ज्ञानामृत अब पियो न भुलसो, विभ्रमके अंगारों से,

अपने आपकी०। चिदानन्द०, अपने आपकी० ॥३॥

बाह्य विषय नहिं सुख दुख देते, इनका सत्त्व निराला है,  
द्रव्यकर्म भी मुझसे बाहर, अपनी परिणति वाला है।  
परका आश्रय करके खुदको, कर्म उदयमें ढाला है,  
विषय कषायों रूप बर्तकर, किया स्वयंको काला है।

बचो लोभ छल क्रोध कपट, निजके विभाव गद्धारों से,

अपने आपकी०। चिदानन्द०, अपने आपकी० ॥४॥

छोड़ो परका गीत राग अब, अपने प्रभुके गुण गावो,  
शुद्ध सनातन नित्य निरञ्जन, ज्ञानज्योति मनमें भावो।

रहता सदा समीप स्वयं इसके आश्रयसे हित पावो,  
सहजानन्द परम ज्योतिर्मय, सार परम पदमें आवो।

सदामुक्तं परमेश्वर पेखो भक्ती के इन द्वारों से,

अपने०। चिदानन्द०, अपने० आपकी० ॥५॥

( १३३ )

भैया मेरे न रभव विषयोंमें न यमाना।

भैया मेरे अपनो स्वरूप न भुलाना।

देखो निज दृष्टि निभाना-निभाना ॥ भैया० ॥टेक॥

ये मन ये विज्ञान निराला, सब गतियोंमें सबसे आला ।

मुक्तिके मंदिरके द्वारों—का यह खोले बन्धन ताला ॥

अपनेमें आपहि सुहाना-सुहाना । भैया० ॥१॥

निज परिचय विन जगमें ढोले, अब स्वरूप रच अधमल धो ले ।

सबके ज्ञाता सबसे न्यारे, निज ज्ञायकतामें रत हो ले ॥

जानो ये सारा — विराना विराना । भैया० ॥२॥

जब लग रोग मरण नहिं आये, शान्ति सुधारस पीता जाये ।

सहजानन्द स्वरूप न भूलो, सारा अवसर बीता जाये ॥

शिवपथमें कदम बढ़ाना-बढ़ाना । भैया० ॥३॥

( १३४ )

अहो स्त्सञ्ज गुरुखाणी, सहज मुद्रा प्रभूदर्शन ।

सहज शिवमार्ग दरशाते, शरण है स्वात्म अवलम्बन ॥टेक॥

ये नव तत्त्वोंमें रहता भी, न अपनी एकता त्यागे ।

सकल परभावसे ये भिन्न, जगमग ज्योतिसे जागे ॥

ये शाश्वत पूर्ण प्रभु भी पूर्ण, पूर्णसे पूर्ण निष्पादन ।

पूर्ण कैवल्यपरिणामिका, पूर्ण निजब्रह्म ही साधन ॥अहो० ॥१॥

साधु, पाठक, मुनीश्वर, जिन, सिद्ध हैं आत्मसंदर्शन ।

सहज हो शुद्ध प्रभु पदका, अभेदस्मरण अभिवन्दन ॥

स्वयं कृता स्वयं कारण, स्वयं कर्म हि स्वयं फल है ।

इसी निश्चयसे साधकका, ध्यान होता समोत्तम है । अहो० ॥२॥

अहो सर्वत्र दिखती आत्म-प्रभु की ज्योति व कलायें ।  
इन्हींके द्वार इनके पार, सहज निज ब्रह्मको पायें ॥  
निरंजन शुद्ध ज्ञायक देव-का हो नित्य उद्यापन ।  
निरंतर हो सहजआनन्द, अमृतका ही उद्भावन । अहो॥३॥

( १३५ )

परमात्मा व आत्म में कुछ भेद नहीं है ।

आत्मस्वभाव में भी नेह खेद नहीं है ॥टेक॥

इक जान आत्मब्रह्म को, इसमें ही सार है ।

संसार तो अपार रार, सब असार है ॥

निजतोषमें संतोष जो भी ज्ञानी करेगा ।

परमात्मतत्त्वका निराट्, रूप लखेगा । परमा० ॥१॥

कठिनाइ कुछ नहीं है ज्ञानकी है जरूरत ।

सत्यार्थ ज्ञान होते ही सारी हैं सहूलत ॥

जैसा ही यम नियम समाधि, होने को होगा ।

हो जायगा वो अपने आप, फर्क न होगा ॥परमा०॥२॥

देखो तो अपने आपमें, ब्रह्मत्व बसा है ।

परहृष्टिसे ये लोकमें, सर्वत्र फसा है ॥

परसे पृथक् हो आपमें, जब मग्न ये होगा ।

तब सहज स्वयं शान्त ही, परमात्मा होगा । पर०॥३॥

( १३६ )

जिनके उपयोगमें स्वयं नहीं, उनने कुछ ज्ञान किया न किया ।

जिनको निजका सरधान नहीं, प्रभुका सरधान किया न किया ॥१॥  
 परसे विभक्त निजमें समस्त, निज तत्त्वका लक्ष्य कभी न किया ।  
 उनने घर अंबर परिजन धन, आदिक सब त्याग किया न किया ॥२॥  
 अविकार अमल शुचि चित्स्वभावमें, जिसने ध्यान कभी न दिया ।  
 तप संयम ब्रत जप भजन गान, अतशन वनवास किया न किया ॥३॥  
 निज सहजानन्द सुधारस जिनने, अनुभव कण्ठ कभी न पिया ।  
 तिन कोटिक दान दिया न दिया, तिन तीरथलाभ लिया न लिया ॥४॥

( १३७ )

अथ विलय नित्य मय सकल वस्तुके, बोधका मर्म यही पाया ।  
 सब परिणमते खुद्द खुदमें ही, नहिं परसे कुछ मुझमें आया ॥५॥  
 जो जो है वह वह ही है सदा, उसकी परिणतियाँ नाना हैं ।  
 परिणतियाँ क्षण क्षण मिटती तू, क्यों उनमें बना दिवाना है ॥६॥  
 मौलिक स्वरूप गर सकल वस्तुका, जान लिया तो ज्ञानी है ।  
 गर दृश्यमान ही सब कुछ हैं, यों माना तो अज्ञानी है ॥७॥

पर परिणतियोंको देख राग रुष, मोह करे वह दोषी है ।  
 मैं चित्प्रकाश हूं, चिद्विलास हूं, यों निरखे निर्दोषी है ॥८॥  
 जो देहबोधविविधि पिण्डरूप, जगसे रखते यशकी आशा ।  
 वे प्रभुतानाश तो करते ही, करते कुयोनियोंमें वासा ॥९॥  
 अब सहज ज्ञान दर्शनमय अपना, सहजानन्द स्वरूप लखो ।  
 परसे विविक्त हो निजमें रत, हो शाश्वत निज आनन्द चखो ॥१०॥

( १३६ )

न आवे किसी जीवपर रोष, लखो सर्वत्र ब्रह्म निर्देष ॥टेक॥

जिसकी होती जो कुछ करनी, सब उपाधिवश होती भरनी ।

गह तू तत्त्व दृष्टि की तरनी, पा अविचल सन्तोष । न०॥१॥

परकी चेष्टा परतक रहती, तुम तक तो वह नहीं पहुंचती ।

कर विकल्प क्यों व्यर्थ दुखी हो, पा अपना कुछ होश न०॥२॥

सहजानन्द स्वरूप तिहारो, अब अपना हितपंथ सम्हारो ।

ज्ञानस्वरूप ज्ञानमें धारो, भजो बनो निर्देष न०॥३॥

( १३७ )

मुझे न है परका पतयारा, मुक्ती का प्रोग्राम हमारा ॥टेक॥

मैं खुद में खुदका करतारा, परसे नहि मेरा निस्तारा ।

था, है, होगा कोइ न हमारा, मुझको केवल मैं ही सहारा ॥१॥

होऊँ जब निज देखनहारा, हो तब ज्ञानानन्दप्रसारा ।

संकटका नहि लेश गुजारा, अब निजपदका होश सम्हारा ॥२॥

ब्रह्मका भागा सब अंधयारा, मुझमें मुझका है उजयारा ।

सहजानन्द स्वरूप हमारा, खुद ही जिसका राखनहारा ॥३॥

( १४० )

मेरा परम शरण प्रभु निविकार, जो सहज शुद्ध चिच्छमत्कार ॥टेक

प्रभु सुध भूलि अमित दुख पाया, अहित विषयवन अनिल सताया

मैंने अब तो लखा, निज लखनहार । मेरा० जो० । मेरा०॥१॥

सहज शुद्ध इस चित्प्रकाशमें, वास किया जिस चिद्विलासमें ।

उसने हि लही, महिमा अपार । मेरा०, जो० । मेरा० ॥२॥

सहजानन्दतृप निज ज्ञानी, योगीका सर्वस्व निधानी ।

मेरे हृदय बसो आनन्दकार । मेरा० जो० । मेरा० ॥३॥

१४१

मेरा तो इक चित्स्वभाव, दूसरा न कोई ॥टेक॥

धन घर परिजन निधान, सुहृद देह प्रकट आन ।

राग बोध भी न मेरे, अन्य क्या हो कोई ॥मेरा तो० ॥१॥

शाश्वत अविकार सार, निरवधि जिसका प्रसार ।

योगियों ने एक मात्र जो स्वरूप जोई ॥मेरा तो० ॥२॥

सहजानन्दैकरूप, ज्ञाता षट्द्रव्य भूप ।

जिस आश्रय सकल सिद्धि, मेरा नाथ सोई ॥ मेरा तो० ॥३॥

( १४२ )

तू क्या ललचै माया न, किसी की रही ।

यहैं तू ही मिट लेगा यह तो, वही की वही ॥टेक॥

कभी तो सम्राट होकर, पाई विपुल मही ।

अब थोड़ेसे दुकड़ों में क्यों, दृष्टि लग रही ॥१॥

कभी भी जड़ सम्पदासे, तृप्ति न लही ।

जड़से पा लेगा क्या अब, सोच तो सही ॥२॥

चक्री नारायण के भी, जु साथ न रही ।

नश्वर दुखकारिणी की, टेक क्यों गही ॥३॥

मायावी प्राणियोंने, कीर्ति कुछ कही ।

## मनोहर पद्मावलि द्वितीय भाग

तेरी प्रभुताका उनको, भान भी नहीं ॥४॥

सहजानन्दस्वरूपी, सार तो यही ।

दर दर तू भटके क्यों अब, जान ले सही ॥५॥

नरभवमें आ करके किया क्या बता ।

भोगोमें रम करके, लिया क्या बता ॥टेक॥

सिन्धूके दो तटसे सेल जूँ बहे ।

बह करके कहीं सेल जुएँ में जुड़े ।

यों ही कठिन नरभव पाना कुछ पता ॥ नरभवमें ॥१॥

उत्तम कुल देश संगति बुद्धि तन वचन ।

इनका क्यों लाभ खोता कुछ तो कर मनन ।

पशुओं की जिन्दगी सी जिन्दगी धता ॥ नरभवमें ॥२॥

सारे कर्मोंका बन्धन यहीं से नशे ।

सुरपति भी नरभवके लिए तरसे ॥३॥

सहजानन्दी प्रभुको रहा क्यों सता ॥ नरभवमें ॥३॥

( १४४ )

जय जय एकत्व दृष्टि । करती जो शुद्ध सृष्टि ॥टेक॥

परिणति स्वातन्त्र्य अतः, स्वयं कतृ कर्मरूप,

साधक आश्रेय यही, करण सम्प्रदानरूप ।

ऐसी अद्वैतदृष्टि, करती आनन्द सृष्टि ॥ जय० ॥१॥

नरभव निज परिणतिमें, नित्य अपादानरूप ।

निजगुण पर्यायोंका अभिन्न आधार रूप ।

यों अभिन्न अनुभवसे, होती सहजात्म दृष्टि ॥जय०॥२॥

सहजज्ञान सहज दृष्टि, सहजानन्दस्वरूप ।

सहजशक्तिमय विशुद्ध, एकरूप त्रिजगभूष ।

शिवसाधन भवनाशन निजकी यह सहजदृष्टि ॥जय०॥३॥

( १४५ )

देखो देखो निजमें क्या रचना भरी ।

जिस रचनाके लखनहार योगी तृप्त हैं वसु पहरी ॥टेक॥

दर्शन ज्ञान आदि गुण जिनकी महिमा बहुत बड़ी ।

चिद्विलासमें तीन लोक की, रचना सकल जड़ी ॥देखो०॥१॥

गुणमें गुणका है प्रकाश कैसी यह ज्योति मढ़ी ।

जिसमें नहिं परका प्रवेश कैसी यह सुदृढ़ गढ़ी ॥ देखो० ॥२॥

सहज स्वसंचेतनमें लगती, सहजानन्द झड़ी ।

निष्कलञ्च इस निज अनुभवसे, कटती कर्म लड़ी ॥देखो०॥३॥

( १४६ )

शिवसाधक संकट हारक, प्रभु तेरा मर्म पिछाना ।

विधि विभाव विग्रहसे सूना, सहजसिद्ध भगवाना ॥

शिवसाधक संकटहारक, प्रभु तेरा मर्म पिछाना ।

जय हो, जय हो, जय हो, जय जय जय हो

सहजसिद्ध भगवाना ॥टेक॥

राग द्वेष पुद्गल उपाधिकी, छाया माया जाना ।

नानामें भी एकरूप नहिं, हुआ न होगा नाना ॥

शिवसाधक संकटहारक, प्रभु तेरा मर्म पिछाना ।

जय हो, जय हो, जय हो, जय जय जय जय हो

सहजसिद्ध भगवाना ॥१॥

निर्विकल्पसा है विकल्प, नहिं, कुछ विकल्प है आना ।

निर्विकार है गुणविकार जो, गुणमें रहा समाना ॥

शिवसाधक० । जय हो० ॥२॥

ज्ञानप्रसार असीम सहजका, चमत्कार सब जाना ।

उमगो सहजानन्द जहाँ जहें, वह आधार पिछाना ।

शिवसाधक० । जय हो० ॥३॥

( १४७ )

कर अब सहज तत्त्वसे प्रेम । स्वपर सकल जीवोंमें

जो सम, तिस आश्रय ही हेम ॥ कर अब० ॥टेक॥

सहज तत्त्व ज्ञायकस्वभाव से, विमुख जगतका जीव ।

दर दर भटकत धरत विविध तन, सहत विपत्ति अतीव ॥

कर मत मायारूपसे प्रेम । कर० । स्वपर० ॥१॥

स्वतःसिद्ध परमार्थ निरञ्जन, ध्रुव चैतन्यप्रकाश ।

अचल सरल मृदु शान्त सनातन, जिसका अतुल विकास ॥

नित्य निर्मल निजमें ज्यों हेम । कर० स्वपर० ॥२॥

सहज ज्ञानका सहज ज्ञानसे, सहजहि जाननहार ।

सहजानन्द सुधारस पीता, हो शाश्वत अविकार ॥

कर अब यों ही अन्तर्नेम । कर० । स्वपर० ॥३॥

( १४६ )

अब हमारा मार्ग होगा, सारे जगसे ही निराला ।

क्योंकि मेरी धुनि लगी है, उसमें जो है सबसे आला ॥टेक॥

मुझको संगम मुझको चक चक, नहिं सुहातो इक घरी है ।

क्या है शरना क्या है करना, मुझपै जाविर विधि अरी है ॥१॥

भूला भटका अब लों झ्रमवश, होना था सो हो लिया अब ।

अब समझ आई है हमने, मंत्र हितका पा लिया सब ॥२॥

परको अपना माना था बस, इसमें ही सब जाल छाया ।

निजको निजके मानते ही, छूटने लगती है माया ॥३॥

बात थी कितनी सी जड़में, हो गया कितना बतंगड़ ।

बात भी कितनी सी करनी, दूर होगा सब भदंगड़ ॥४॥

अब तो सहजानन्द ज्ञायक, चिन्तवन का ही समय है ।

चित्र प्रभुकी साधनासे, फिर तो यह चेतन अभय है ॥५॥

( १४६ )

विधिफल की बातें सुन सुन कर, हे भक्त पथिक क्यों घबड़ाता ।

विधिफल पाने नहिं पानेकी, तुझमें है कला क्यों नहिं लखता ॥टेक॥

द्वेष यश राज्य स्वजन इत्यादि, विविध शुभ विधिफल आँय घनें ।

जो उनको कुछ अपनाये नहीं, क्यों फल पानेकी बात बने ॥

जानी बनं साहस कर अनुपम, निज निधिका फज क्यों नहिं

चखता । विधिपल पाने ॥१॥

द्वारिद्र्य व्याधि अपयस अनेक, उपसर्ग अदुभ फल आँय घनें ।

मनोहर पद्मावलि द्वितीय भाग

पर जान विकल्प न आये गर, क्या फल पाने की बात बने ॥

ज्ञानी बन साहस कर० । विधिफल० ॥२॥

मैं केवल निज चेतनाभावका, कर्ता, भोक्ता अधिकारी ।

इस श्रद्धामृतके पानसे होता, ज्ञानो निर्भय अविकारी ॥

ज्ञानी बन साहस कर० । विधिफल० ॥३॥

मुख मोड़ नहीं उस ओर जहाँ, संयोग वियोग निदान बसे ।

मुख मोड़ स्वरूपकी ओर जहाँ, स्वाधीन सहज आनन्द बसे ॥

ज्ञानी बन साहस कर० । विधिफल० ॥४॥

गर अपना आप संभाल लिया, विधिका वश वहाँ नहीं चलता ।

गर मोह मूलको तोड़ दिया विधि कुसुम मिटैं ज्यौं नहिं फलता ।

ज्ञानी बन साहस कर० । विधिफल० ॥५॥

( १५० )

तुम बिन मेरा कीन शरण है परम ब्रह्म अविकारी परम ब्रह्म  
अविकारी ॥टेक॥

तुमको भूल जगतमें भटका, मिथ्या पाप विकारों से ।

तेरी सुधमें शिवपथ पाया, तत्त्वज्ञान विचारों से ॥

अब मत मुझसे ओभल होना, हे जगसंकट हारी । परम० ॥१

तीन लोक तिहुं काल समाया, तेरी सीधी लीला में ।

तन विभाव विपदायें छाई, तेरी उल्टी लीला में ।

हो ली बहुत बचा लो अब तो, कर प्रयोग प्रभुताई । परम० ॥२

ज्यौं सर्वत्र मधुर मिश्रीसे व्यक्त होत है मधुराई ।

सहजानन्द पूर्ण प्रभुसे त्याँ, शान्ति सरत है शिवदाई  
रहे रहे शाश्वत तुव अनुभव, हे अनन्त गुणधरी । परम०  
( १५१ )

चिद्रूप हमारा, इसका हि सहारा ।

परभावके प्रसंगमें नहिं मेरा गुजारा चिद्रूप० ॥टेक॥

वस्तुस्वरूपमें नहीं कि, परसे कुछ मिले ।

खुद गर्ज भी किसको कहें, सब सत्त्वके भले ।

स्पष्ट है क्या कष्ट है, विकल्प हि क्यों चले

नहिं हम किसीके कोई नहीं कुछ भि हमारा । चिद्रूप० ॥१

इक द्वेषमें अवगाहि होके, तन अमित मिले ।

वे भी रहे न साथ जो, इतने धुले मिले ।

जड़ वैभवोंकी बात क्या, पर प्रकट ये डले ।

रागादि भी न रह सका, बन करके हमारा । चिद्रूप० ॥२॥

सहजसिद्ध सहज ज्ञान, सहज दर्शमय ।

सहजानन्द स्वरूप, सहज शक्ति मय ।

सहज चिद्रिलासका जिसमें है सहज लय ।

मेरा सहज स्वरूप अमित गुणका पिटारा । चिद्रूप० ॥३॥

( १५२ )

किस ही का राग छोड़कर, किस ही में कर लिया ।

टारा वटोहि ना गई, फिर धर्म क्या किया ॥टेक॥

गृह ग्राम मित्र संपदा परिजनको त्यागकर ।

जनता प्रसन्नताके लिए कस ली गर कमर ।

कुछ छोड़के बहुतोंका मोह, उर बसा लिया । टारा० ॥१॥

धनसंचयार्थ बुद्धिकी, चतुराई थी कभी

अब नाम ख्यातिके लिये विज्ञान है सभी

दुक लालसाको त्यागके, लालच बढ़ा लिया ॥२॥

ब्रत संयमादि भी किए कर पुण्यकी आशा ।

द नाम लाभ अर्चनार्थ अब वही नासा ।

सुध भूल सहज तत्त्वकी, सब व्यर्थ जो किया ॥३॥

( १५३ )

सद्बुद्धि दो हे नाथ, छेड़ न तेरा साथ, मुझको न चाह  
और कुछ, चरणोंमें रहे माथ ॥सद्बुद्धि० ॥टेक॥

किस ही प्रकारका विकार, मुझको न शरण

अब तक किये विकारमें, नाना जनम मरण ।

उन संकटोंमें कोई कभी, दे न सका हाय ॥सद्बुद्धि० ॥१॥

अविकार प्रभुस्वरूप की, रुचि ही मुझे शरण ।

सेऊं विशुद्ध तेरे ज्ञान, दर्शके चरण ।

भूलूं न सहज ज्ञानका, आनन्द कभी नाथ ॥सद्बुद्धि० ॥२॥

जग संपदा की अणूमात्र, भी न मुझे चाह ।

इच्छा यही पूरण करूं मैं, मुक्तिकी ही राह

तेरे समीप भावमार्ग—में चलूं है नाथ ॥ सद्बुद्धि० ॥३॥

( १५४ )

सहज अपना उपयोग सम्हार ।

मोह क्रोध मद लोभ कपट वश, अब तक किया बिगार ॥टेक०॥

जिनका आश्रय करके होते, ये मोहादि विभाव ।

प्रकट भिन्न वे खुदके गर्जी, खूब सम्हारें दाब ।

न बन बेहोश न कर ममकार । सहज० ॥१॥

परम ब्रह्म चैतन्य स्वरूपी, निज निजके करतार ।

सबसे तेरा तुझसे सवका, नहिं सम्बन्ध लगार ।

तुम्हारा तुम ही तक अधिकार ॥सहज०॥२॥

सहजानन्द ज्ञानघन प्रभुका, पाकर शुद्ध प्रकाश ।

मोह कषाय विषय संकट का, अब समूल कर नाश ।

तुम्हारे तुम ही राखन हार ॥सहज०॥३॥

( १५५ )

दीन है वह जो विषयाधीन ।

विषयविरत अन्तर्जनी तो, परम समृद्ध प्रवीन ॥दीन०॥टेक॥

विषयभाव विषयोंके साधन, नश्वर भिन्न असार ।

क्लेशरूप दुखहेतु इन्हीसे, भटके यह संसार ।

धन्य जिन आशा की है छीन ॥दीन है० ॥१॥

शिवसम्पन्न निराकुल निरूपम, सहज सुगम स्वाधीन ।

निजको तजकर विषम विषयमें, धरत नवीन नवीन ।

मूढ वे होते शान्तिविहीन । दीन है० ॥२॥

सहजानन्द ज्ञानघन आतम, अविनश्वर निजसार ।

इस ही के दर्शन आश्रय से, होती शान्ति अपार ।

इसी में रहते योगी लीन ॥दीन० ॥ विषय० । दीन० ॥३॥

( १५६ )

मेरे मन सहज स्वरूप समायो ।

सहज अनन्त ज्ञान दर्शन सुख, शक्ति स्वरूप सुहायो ॥टेक॥

निज निधि विसर पसर विषयनमें, व्यर्थं जगत भरमायो ।

परमैश्वर्यं समृद्ध स्वयं अब, आपहिं आप लखायो ॥१॥

जास आस शिवपास हेतु है, जो ऋषियोंने ध्यायो ।

सरल निरापद जाता द्रष्टा, केवल निज पद भायो ॥२॥

अलख निरञ्जन सहज ज्ञानघन सहजानन्द बसायो ।

कमी यहाँ कुछ रंच नहीं अब, पूर्ण सदा शिव पायो ॥३॥

( १५७ )

प्रियतम अपनी सुध मत भूल ।

हूं चैतन्यप्रकाश निरापद, निजको करो कबूल ॥टेक॥

अन्य विषयके सकल संग जो, तुझको जंचते फूल ।

तुझको भव भव पीड़ित करते, ये ही हैं सब शूल ॥१॥

हृढ़ निश्चय कर जिन गह ली ता, अपना आतम मूल ।

विषम भवोदधि तिरकर पहुंचे, भवके उत्तर कूल ॥२॥

निराधार करता विहृत्प क्यों, थोते ऊल जलूल ।

सहजानन्द ज्ञान अनुभवके, पालनमें नित भूल ॥३॥

( १५८ )

निजकी महिमा लो अब जानी ।

अब तक वृथा बुद्धि अकुलानी । निज०॥ टेक ॥

मूल प्रकाश पाय बिन जगमें, दर दर बाह्यदृष्टि भरमानी ।

मूल प्रकाश दृष्ट होते ही, जंचा स्वयं सबमें लासानी ॥१॥

लोक अलोक बिन्दुवत् भासे, ऐसा ज्ञान गमन असमानी ।

अभित सहज आनन्द सघन हो, व्यापा निश्चल ब्रह्मप्रमानी ॥२॥

शुद्ध अमूर्त परम ज्योतिर्मय, शिवस्वरूप सबमें अगवानी ।

पूर्ण पूर्ण से पूर्ण निकलकर, रहे पूर्ण ही शाश्वत ज्ञानी ॥३॥

( १५९ )

मेरे तो प्रभु गगन बिहारी ।

निश्चय सतत स्वरूप बिहारी ॥ मेरे० ॥ टेक ॥

दर्शन सबको होय चतुर्दिश, चतुरानन सबके हितकारी ।

मनुज सुरासुर पशुपक्षी गण, जिनपद सेय पाप संहारी ॥१॥

सहज निरीह सर्व भाषामय, जिनकी दिव्य ध्वनि सुखकारी ।

शिवविधिधाता सबके त्राता, ज्ञाता द्रष्टा कर्ममुरारी ॥२॥

चरणकमल तल स्वर्णकमल जिनि, रचते शक्तिपति प्रभु इविकारी

सहजानन्द सकल गुण आगर, सर्व चंराचर ज्ञान मंभारी ॥३॥

( १६० )

आपहि अपना किया नाश, मैं आपहि अपना किया नाश ।

मेरो सहज स्वरूप तो चित्प्रकाश । मैंने० ॥टेक॥

प्रकट असार भिन्न तन वैभव, रूप गंध रस परस शब्दरव ।  
 भ्रमवश इनंकी करी आश ॥ मैंने ॥ टेक ॥  
 नरक निगोद कोट पशु पक्षी, भू जल अग्नि पवन तरु मक्षी ।  
 विविध कुभव धर दिया त्रास ॥ मैंने ॥ २ ॥  
 परकी जिस विधि लगन करी अति,  
 यदि की होती लगन आत्म प्रति ।  
 करता सहजानन्दवास ॥ मैंने ॥ ३ ॥

( १६१ )

पाया शिवपथका प्रकाश । मैंने पाया शिवपथका प्रकाश ।  
 जहँ सहज रहत शिव चिद्विलास ॥ मैंने ॥ १ ॥ टेक  
 देखा सहजभाव निज शाश्वत, पर संन्यास किया स्वस्थिति हित ।  
 अब आपमें अपना रहत वास । मैंने ॥ जहँ ॥ मैंने ॥ २ ॥  
 ज्ञानलीनता जब नहिं रहती, ध्यान लीनता रहती महती ।  
 तपका तो रहतहि हित लिवास ॥ मैंने ॥ जहँ ॥ मैंने ॥ ३ ॥  
 संयम अनशन आदि तपोंमें, सहजानन्द झरत आत्ममें ।  
 सब विधि विभावका नशत त्रास । मैंने ॥ जहँ ॥ मैंने ॥ ४ ॥

( १६२ )

टुक रुक जावो, यह मैं आया, लेने शरण तिहारी,  
 हे सहजानन्द बिहारी ॥ टुक ॥ टेक ॥  
 जबसे दृष्टिमें आये प्रभुवर, शान्ति मिलत निर्भेद हो मिलकर ।  
 टुक अन्तर रहता मिलापमें, करत विकार लुटाई, हे सह टुक ॥ १ ॥

शान्त कान्त निजअनुभव पथसे, गुप्त लुप्त हो'थिर अविचलसे ।  
आते आते न जाने प्रभु, करता कौन ठुकाई ।

हे सहजा०॥ दुक०॥२॥

इस उपयोगमें ध्यान तुम्हारा, लोटे चाहे दुखप्रकारा ।  
मेरी लगन लगी तुम ही सों, मेरे सहज सहाई । हे० ॥दुक०॥३

( १६३ )

धन्य धन्य जय, जय जय जय हे, चित्स्वरूप हम्हारी,  
हो अनुपम निधि भंडारी ॥ धन्य० ॥ टेक ॥  
दिव्य भोग सुख भोग रहे हो फिर भी परिणति न्यारी ।  
सहज सिद्ध सच्चिदानन्द की सतत रहत सुध सारी ।  
हो अनुपम निधि भंडारी ॥ धन्य० ॥१॥

अशुभ नरकगतिके विपाकवश, अशुभ विक्रिया धारी ।  
मारत मरत सहृत अति वेदन फिर भी आत्मविहारी ।  
हो अनुपम निधि भण्डारी ॥धन्य०॥२॥

तिर्यग्गति के संज्ञी हुंडक अटपट तनके धारी ।  
बाहरकी सुध भूल वयं में आतम ज्योति सम्हारी ।  
हो अनुपम निधि भंडारी ॥ धन्य० ॥३॥

चरित मोहवश बने असंयत सहजविरति मगचारी ।  
चलत उठत बैठत सोवत पर, ज्ञान क्रिया ही जारी ।  
हो अनुपम निधि भंडारी ॥ धन्य० ॥४॥

संयम पथसे चढ़ समाधिमें, निर्विकल्प अविकारी ।

सहजानन्द सुधारस पीकर हुए अमर हितकारी ।  
हो, अनुपम निधि भण्डारी, ॥ धन्य० ॥५॥

( १६४ )

हे ज्ञानानन्द निधान सहज भगवान कषाय न लाऊँ,  
विषयोंमें नहीं लुभाऊँ ॥टेक॥

हूं शाश्वत ज्ञानानन्दरूप, भ्रमसे फिरता धरता कुरूप ।

नहिं बाहर तिल तुष्टमात्र सार क्यों जाऊँ ।

विषयोंमें नहीं लुभाऊँ । हे ज्ञान० ॥१॥

हूं खुदका खुद ही शरण सार, भ्रमसे अपनाता बाह्य भार ।

चर अचर अन्य नहिं मेरा, क्यों ललचाऊँ । विष० । हे० ॥२॥

खुद खुदका कर्ता भोक्ता हूं, नहिं परका कर्ता भोक्ता हूं ।

वस्तुत्व दुर्ग दृढ़ सहज, नहीं भरमाऊँ । विषयो० । हे० ॥३॥

( १६५ )

भव वनमें भटकनहारे की हम कथा सुनाते हैं

हम कथा सुनाते हैं ।

प्रभुसमं भी जाननहारे की हम व्यथा सुनाते हैं

हम व्यथा सुनाते हैं ॥टेक॥

निज वस्तु से नाता तोड़ा, पर वस्तु से नाता जोड़ा ।

ज्ञानानन्द स्वभाव से चिंगकर, मोहमें अटपट दौड़ा ।

अनुभूतिकी कली, कुमतिमें रली, विषयमें चली, धोर दुख पाया ।

सुनकर जिसकी कथा हृदय कप जाते हैं, हम व्यथा० । भव० ॥१॥

चिर सहे निगोद किलेशा, फिर धरे विविध पशु भेषा ।  
 सुर नर नरकन भटक भटक कर, हित न किया कहुं लेशा ॥  
 अज्ञानका छला, चाहमें जला, कुगतिमें ढला होश नहिं पाया ।  
 पाकर यह दुर्दशा विकल हो जाते हैं, हम व्यथा० । भव०॥२॥

योगी निज अन्तर्दृष्टी करी, आन्ति सब हरी, विपत सब टरी,  
 शान्ति निज पाई…… ।

मोही ये मेरा मेरा करे, चाहमें मरे, भटकता फिरे, भोहमें भाई ।

हम व्यथा सुनाते हैं । भव वन० ॥३॥

योगी आत्मयोगमें बढ़े, श्रेणिपर चढ़े, हुए अकलङ्क पूज्य  
 कृषिराई……

मोही ये पर प्रसंगमें बढ़े, मोहपर अड़े, सने अघपङ्क मूढ  
 भवराई …… ॥

क्या बिना ज्ञानके शान्ति हुई कहुं ज्ञानी, खुद सहजानन्द निधान,  
 कहाँ तू प्राणी, कहाँ तू प्राणी, कहाँ तू प्राणी ।

भववनमें० हम कथा० । प्रभुसम० । हम व्यथा० ॥४॥

( १६६ )

रसना क्यों न ज्ञानरस पीती, रसना क्यों न ज्ञानरस पीती ।  
 षट् रस भोजन खा पीकर भी, रही रीती की रीती ॥ रसना ॥ एक  
 वैरभाववश तरल तरंगनि, गोते खाये अमीती ।  
 विषयरागवश मृदुता की पर, मिटा सकी नहिं भीती ॥ रसना० ॥  
 अमित काल तो जन्मी भी न, जन्मी भी तो लीती ।

बाणी मिली तो विषयनि हारी, करी न प्रभु गुण प्रीति ॥ रसना ०२  
ज्ञानामृतका परम सुफल है, सहजानन्द प्रतीती ।  
विषयरमणका फल वह दुर्गति, जो अनादिसे बीती । रसना ३ ॥

( १६७ )

हूं तो प्रभु जैसा, हो गया बहुभेषा, संसारी ।

भूल बड़ी दुखदैन, प्रभु जी मेरी भूल मिटे ॥ टेका ॥

ध्यान तुम्हारा भक्त जनोंके, सारे संकट टाले ।

तृष्णा ममता आश हटाकर, आत्म स्वरूप उजाले ।

हूं तो प्रभु जैसा, अनुपम ज्ञानेशा, अविकारी ।

सत्य सहज सुख दैन, इसी में मेरी दृष्टि रहे ॥ हूं० १ ॥

ज्ञानानन्द सुधारस पीके, कौन विषयविष पीवे ।

यह तो शुद्ध सनातन अपने, सहज ज्ञान से जीवे ।

हूं मैं परमेशा, शाश्वत धर्मेशा, हितकारी ।

अचल अमल गुणधाम, इसी में मेरी दृष्टि रहे । हूं तो० १२ ॥

जिन खोजा तिन पाया प्रभु को, प्रभु तो अन्दर था ही ।

निज सन्मुख होते हि आ गया सहजसिद्ध शिवराही ।

हूं मैं निर्दोषा, निरवधि गुणकोषा, स्वविहारी ।

सहजानन्दनिधान, इसी में मेरी दृष्टि रहे ॥ हूं तो० १३ ॥

( १६८ )

ज्ञान सुधारस पीजौ, प्रियतम ज्ञानसुधारस पीजौ ।

चित्प्रकाशमें भासित वासित शाश्वत आनन्द लोजौ ।

प्रिय० चित० । प्रियतम ज्ञान सुधारस पीजो ॥टेक॥  
 व्यर्थं अनर्थं दुर्धं विषयविष विरस कुरस रसि क्यों अब खीजो ।  
 सहज सुखद अज सहज स्वरस निज, चित् भजि निज विश्राम  
 गहीजो ।

प्रिय० । चित० । प्रियतम ज्ञानसुधारस पीजो ॥१॥

स्वतः सिद्ध स्वाधीन सदाशिव, स्वसंवेद्य संवेदन कीजौ ।  
 बोधि समाधि भावसंयम सजि, शान्ति सिद्धिका लाहो लीजो ।

प्रिय० । चित० । प्रियतम ज्ञान सुधारस पीजो ॥२॥  
 त्रिविधि कर्ममल दल मल गल कर, शुद्धि निरंजन आश्रय लोजो ।  
 सहजानन्द स्रोत शाश्वत शुचि, समयसार नित दर्शन कीजो ।  
 प्रिय० । चित० । प्रियतम ज्ञान सुधारस पीजो ॥३॥

( १६६ )

ज्ञानघन शाश्वत सहजानन्द, पड़ी क्यों विषय कषायनि फंद ॥टेक

गगन समान अलेप अमूरत, परभावोंसे सहज विदूरित ।

स्वयं सिद्ध परिपूर्ण सदोदित, लख निज ज्योति अमंद ।

पड़ा क्यों० । ज्ञानघन० । पड़ा क्यों० ॥१॥

सहज स्वभाव सहज अनुभव रस, मत हो विषयविकल्पोंके वश ।

उलट वमन कर विषय महाविष, छेद मोह विषकन्द ।

पड़ा क्यों० । ज्ञानघन० । पड़ा क्यों० ॥२॥

एक बार भी सत् पौरुष कर, सकल संसरणका संकट हर ।

सहज ज्ञानमय निज अनुभव कर, बन शाश्वत निर्द्वन्द्व ।

पड़ा क्यों० । ज्ञानघन० । पड़ा क्यों० ॥३॥

(१७०) आत्मरमण

मैं दर्शनज्ञानस्वरूपी हूं, मैं सहजानन्दस्वरूपी हूं । टेक॥  
ज्ञानमात्र परभावशून्य, हूं सहजज्ञानघन स्वयंपूर्ण ।  
हूं सत्य सहज आनन्दधाम, मैं सहजानन्दस्वरूपी हूं ॥१॥ मैं०

हूं खुदका ही कर्ता भोक्ता, परमें मेरा कुछ काम नहीं ।

परका न प्रवेश न कार्य यहां । मैं सहजानन्द स्वरूपी हूं ॥२॥  
आऊं उत्तरूं रम लूं निजमें, निजकी निजमें दुविधा ही क्या ।  
निज अनुभव रससे सहज तृप्त, मैं सहजानन्दस्वरूपी हूं ॥३॥

(१७१) आत्मस्तवन

मेरे शाश्वत शरण, सत्य तारण तरण, ब्रह्म प्यारे ।

तेरी भक्ती में क्षण जांय सारे ॥टेक॥

ज्ञान से ज्ञान में ज्ञान ही हो, कल्पनाओंका इकदम विलय हो ।

भ्रान्तिका नाश हो, शान्तिका वास हो, ब्रह्म प्यारे, तेरी० ॥१॥

सर्वगतियोंमें रह गतिसे न्यारे, सर्वभावोंमें रह उनसे न्यारे ।

सर्वगत आत्मगत, रत न नाहीं विरत, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ॥२॥

सिद्धि जिनने भी अब तक है पाई, तेरा आश्रय ही उसमें सहाई ।

मेरे संकटहरण, ज्ञान दर्शन चरण, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ॥३॥

देह कर्मादि सब जगसे न्यारे, गुण व पर्ययके भेदोंसे पारे ।

नित्य अन्तः अचल, गुप्त ज्ञायक अमल, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ॥४॥

आपका आप ही प्रेय तू है, सर्व श्रेयोंमें नित श्रेय तू है ।

सहजानन्दी प्रभो, अंशयामी विभो, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ॥५॥

## ( १७२ ) आत्मधुन

सच्चिदानंद हूं, ज्ञानानन्द । दर्शनानन्द हूं, सहजानन्द ॥टेका॥

चेतनामात्र हूं, हूं अखण्ड पिण्ड ।

हूं अनन्त शक्ति सत्य, रत्नका करण्ड ॥सच्चिदां ॥१॥

ध्रुव निरंजन अमल, ज्योतिका हूं पुञ्ज ।

निर्विकार निराकार, सदानन्दकुञ्ज ॥सच्चिदां ॥२॥

आप ही में आपसे आप ही निर्द्वन्द्व ।

शोक रोग राग द्वेष, कीर्द्ध नहीं फन्द ॥सच्चिदां ॥३॥

पूर्णमें ही पूर्णसे, पूर्णका प्रवाह ।

पूर्ण था पूर्ण रहेगा सदा अथाह ॥ सच्चिदां ॥४॥

ज्ञानमात्र ज्ञानपूर्ण, ज्ञानमय अभिन्न ।

हूं निरंग निस्तरंग, ज्योति हूं अखिन्न ॥ सच्चिदां ॥५॥

## ( १७३ )

तेरा है न कोई साथी, तज मिथ्या सरधान रे ।

माया की उलझन छोड़ो, खुदको ले पहिचान रे ॥टेका॥

जिनमें तू रमता फिरता, कोई न साथ होगा ।

ममता कर पाप बांधा, उसका फंल पाना होगा ॥

इकले ही आये जाये, तज मिथ्या अरमान रे । माया० ॥१॥

जिस तनको आपा कहता, कुछ दिनमें खाक होगा ।

जिसको तू अपना कहता, इक दिन सब साफ होगा ।

हूं है चैतन्य तेरा, कर सच्चा सरधान रे । माया० ॥२॥

परको तू कर नहिं सकता, व्यर्थ हि तू खिन्न होता ।  
परको नहिं भोग सकता, भ्रममें क्यों खाय गोता ।  
खुदमें खुद तृप्त होकर, पा सहजानन्द रे । माया० ॥३॥

(१७४)

मेरा शरण समयसार, दूसरा न कोई ।  
जा प्रसाद कार्य समयसार सिद्धि होई ॥टेक॥  
अविनाशी ब्रह्मरूप, अविचलन अज चित्स्वरूप ।  
शुद्ध बुद्ध स्वतःसिद्धि, जो प्रभु मैं सोई ॥१॥  
प्रकटरूपका अधार, निश्चयतः निराधार ।  
ये ही गुरु ये ही शिष्य, भक्त प्रभू दोई ॥२॥  
सहजानन्द सहज ज्ञान, निज परिणतिका निधान ।  
जिन चीन्हा उन परिणति, निर्विकल्प जोई ॥३॥

(१७५ से १८८) संक्षिप्त कीर्तन धुन

अर्हन् सिद्ध अर्हन् सिद्ध, सिद्ध सिद्ध अर्हन् अर्हन् ।  
अर्हन् भगवन् सिद्ध भगवन्, सिद्ध सिद्ध अर्हन् अर्हन् ॥  
अर्हन् सिद्ध अर्हन् सिद्ध, अर्हन् भगवन् सिद्ध भगवन् ।  
अर्हन् सिद्ध अर्हन् सिद्ध, अर्हन् भगवन् सिद्ध भगवन् ॥  
अर्हन् सिद्ध अर्हन् सिद्ध, शिवपति केवलज्ञानी भगवन् ।  
सूरे पाठक साधो साधो, रत्नत्रयमय पूज्य महात्मन् ॥  
अर्हन् सिद्ध अर्हन् सिद्ध, सिद्ध सिद्ध अर्हन् अर्हन् ।  
सूरे देशक साधो जिनवर, अर्हन् सिद्ध सिद्ध अर्हन् ॥

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित शान्तिनिधान ।

भगवद्वाणी हित अमलान, प्रतिबोधक गुरु कृपानिधान ॥

शिवेश जिनेश गणेश महेश, पूजत पाद नरेश सुरेश ।

समयसार चैतन्य गणेश, ध्यावत पावे पद परमेश ॥

ॐ ॐ ॐ अर्हन्, ॐ ॐ ॐ । ॐ ॐ ॐ सिद्ध, ॐ ॐ ॐ ॥

ॐ ॐ ॐ मुनीन्द्र, ॐ ॐ ॐ । ॐ ॐ उपाध्याय, ॐ ॐ ॐ ॥

ॐ ॐ ॐ मुनिवर, ॐ ॐ ॐ । ॐ ॐ ॐ ब्रह्मा, ॐ ॐ ॐ ॥

सच्चिदानंद ॐ सहजानन्द, निजानंद परमानंद सच्चिदानन्द ॥

सच्चिदानंद ॐ सहजानन्द, नित्यानंद परमानंद शाश्वतानंद ॥

शिवपति शंकर ब्रह्मा गणेश, जगन्नाथ वज्रांग महेश ।

विष्णु बुद्ध हरिहर सर्वेश, ईश्वर प्रभु विभु तुम्हीं जिनेश ॥

सन्मति वर्द्धमान अतिवीर, महावीर तीर्थकर वीर ।

त्रिशलानन्दन हर भवपीर, हो सन्मति पहुंचू भवतीर ॥

नित्यनिरंजन जय निर्नामि, संकटमोचन जय अभिराम ॥ टेक ॥

हे चेतन आनंदनिकेतन, रहो विराजो मम उपयोग ।

शाश्वत सत्य तुम्हारी रुचिसों, मिटते जन्म जरादिक रोगा ॥ १ ॥

ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ । ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ ॥ टेक ॥

ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ । ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ ॐ ।

ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ ॐ । ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ ॐ ॥

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित शान्तिनिधान ।

अविकल नित्य रहे निजभान, दो ऐसा अविच्छल वरदान ॥

ॐ भज ॐ भज, ॐ भज ॐ । ॐ भज ॐ भज, ॐ भज ॐ ।  
ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ । ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ ॥

( १८६ ) सहज परमात्मतत्त्वभक्ति

पाते सहज सुख आतमा, ऐसे निरत निज धाममें ।  
हो ज्ञानपरिणति एकवत, अविचल सहज निजभावमें ॥  
सर्व कर्म मल तन से रहित, इक स्रोत सब पर्यय गमा ।  
वह शुद्ध प्रभु चैतन्य हूं, कारण सहज परमात्मा ॥१॥

शुद्धं चिदस्मि है मूर्ति जिसकी, ॐ या स्वीकारता ।  
निज मंत्र जप कर मूर्ति बिन, निजमंत्रमें जो वर्तता ।  
विषदा विकल्पोंका विलय, पाता जहाँ वह आतमा ।  
वह शुद्ध प्रभु चैतन्य हूं, कारण सहज परमात्मा ॥२॥  
सब अन्य द्रव्य विभावसे गत, स्वगुण रत्न करण्ड जो ।  
पूरण सनातन एक निरवधि, खण्ड बिन चित्पिण्ड जो ।  
सब कल्पनाओंसे जुदा, निक्षेप नय नहि नहि प्रमा ।  
वह शुद्ध प्रभु चैतन्य हूं, कारण सहज परमात्मा ॥३॥

कर्ता न भोक्ता ज्योति उत्तम, स्वयं राजित गुप्त जो ।  
है ज्ञानिजन अनुभाव्य निष्कल, स्वरस निर्भर सत्त्व जो ।  
चिन्मात्र जिसका धाम नित्य, प्रकाशमय नियतात्मा ।  
वह शुद्ध प्रभु चैतन्य हूं, कारण सहज परमात्मा ॥४॥  
अद्वैत ईश्वर समय विष्णु, व ब्रह्म अभिधावाच्य जो ।  
चित्पारिणामिक अरु परात्पर, भावनासे मेय जो ॥

जिसके मुदर्शन आश्रयोंसे अमल पर्यय बहु थमा ।

वह शुद्ध प्रभु चैतन्य हूं, कारण सहज परमात्मा ॥५॥

भूतार्थनय विपरीत आशयमें, कभी प्रतिभासता ।

गुणखण्ड नाना अंशमय, यद्यपि अखण्ड स्वभावतः ।

आनन्द दर्शन ज्ञानवीर्य, चरित्रमय सहजात्मा ।

वह शुद्ध प्रभु चैतन्य हूं, कारण सहज परमात्मा ॥६॥

जो शुद्ध अन्तस्तत्त्वके सुविलासकी निजभूमि है ।

निज नित्य लक्ष्मीप्रद निरंजन, निरावरण सुधाम है ॥

निर्भेद मग्न समस्त समस्त गुण, पर्यय जहाँ अचलात्मा ।

वह शुद्ध प्रभु चैतन्य हूं, कारण सहज परमात्मा ॥७॥

योगी कुशल ध्याते तथा, संकेतमें कहते जिसे ॥

होता समाधि सुभाव उत्तम रीति ध्यानेसे जिसे ॥

प्रभु मुक्ति मग जिसके उपासन, से हि पाता आत्मा ।

वह शुद्ध प्रभु चैतन्य हूं, कारण सहज परमात्मा ॥८॥

(ॐ शुद्धं चिदस्मि—इसकी बार बार भावना करना )

( १६० )

हमारा प्रभु निज आत्मराम ॥ टेक ॥

प्रभु परिचय बिन, सूख जानन को, भ्रमत रहा हर ठाम ।

परमात्म प्रभुसे पहिचाना, अन्तर आत्मराम ॥१॥

सहजसिद्ध चैतन्य पिण्ड यह, अब जाना निजधाम ।

कीरति रूप गंध सपरस रस, शब्द भोग बे काम ॥२॥

परस रूप रस गंध शब्दवी रति इच्छा बेकाम ।  
 इनसे पृथक् स्वतंत्र अमर अज हूँ चेतन निष्काम ॥३॥  
 प्रभुता देखत विपदा भागे, मिले सत्य आराम ।  
 सहजानन्द मूल कारणपरमात्म आत्मराम ॥४॥

### सहजपरमात्मतत्त्वाष्टकम्

॥ शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥  
 यस्मिन् सुधास्त्रि निरता गतभेदभावाः ।  
 प्रापुर्लभन्त अचलं सहजं सुशर्म ॥  
 एकस्वरूपममलं परिणाममूलं ।  
 शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥१॥  
 शुद्धं चिदस्मि जपतो निजमूलमंत्रम् ।  
 ॐ मूर्ति मूर्तिरहितं स्पृशतः स्वतंत्रम् ॥  
 यत्र प्रयान्ति विलयं विपदो विकल्पाः ।  
 शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥२॥  
 भिन्नं समस्तपरतः परभावतश्च ।  
 पूर्णं सनातनमनन्तमखण्डमेकम् ॥  
 निक्षेपमाननयसर्वविकल्पदूरम् ।  
 शुद्धं चिदस्मि परमात्मतत्त्वम् ॥३॥  
 ज्योतिः परं स्वरमकर्तृं न भोक्तृ गुप्तम् ।  
 ज्ञानिस्ववेद्यमकलं स्वरसाप्तसत्त्वम् ॥

चिन्मात्रवाम नियतं सततप्रकाशम् ।

शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥४॥

अद्वैतब्रह्मसमयेश्वरविष्णुवाच्यम् ।

चित्पारिणामिकपरात्परजल्पमेयम् ॥

यद्दृष्टिसंश्रयणजामलवृत्तितानम् ।

शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥५॥

आभात्यखण्डमपि खण्डमनेकमंशम् ।

भूतार्थबोधविमुखव्यवहारदृष्टचाम् ॥

आनन्दशक्तिदृशिबोधचरित्रपिण्डम् ।

शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥६॥

शुद्धान्तरङ्गसुविलासविकासभूमि ।

नित्यं निरावरणमञ्जनमुक्तमीरम् ॥

निष्पीतविश्वतिजपर्ययशक्तिं तेजः ।

शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥७॥

ध्यायन्ति योगकुशला निगदन्ति यद्धि ।

यद्ध्यानमुक्तमतया गदितः समाधिः ॥

यदर्शनात्प्रवहति प्रभुमोक्षमार्गः ।

शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥८॥

आर्य

सहजपरमात्मतत्त्वं स्वस्मिन्ननुभवति निविकल्पं यः ।

सहजानन्दसुवन्द्यं स्वभावमनुपर्यं याति ॥९॥